के रस-विनिमय को कर्म-सिद्धान्त के आधीन नहीं समझना चाहिए। वह तो उस दिव्य राज्य की वस्तु है, जिसमें श्रीभगवान् एवं उनके भक्त क्रियाशील हैं। भगवद्भक्ति इस प्राकृत-जगत् की क्रिया नहीं है; वह उस वैकुण्ठ-जगत् की वस्तु है, जहाँ सच्चिदानन्द का अधिकार है।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः।।३०।।

अपि=भी; **चेत्**=यदि; **सुदुराचारः**=अतिशय दुराचारी; **भजते**=भक्तियोग में तत्पर हो जाता है; **माम्**=मेरे; **अनन्यभाक्**=अनन्य भाव से; **साधुः**=सन्त; **एव**=ही; **सः**=वह; **मन्तव्यः**=मानने योग्य है; **सम्यक्**=यथार्थ; **व्यवसितः**=निष्ठा वाला है; **हि**=क्योंकि; **सः**=वह।

अनुवाद

यदि कोई अतिशय दुराचारी भी मेरी अनन्यभक्ति के परायण हो जाय, तो उसे साधु ही मानना चाहिये, क्योंकि वह मेरी एकान्त निष्ठारूपी श्रेष्ठ निश्चय वाला है।।३०।।

तात्पर्य

इस श्लोक में **सुदुराचारः** शब्द बहुत महत्त्वपूर्ण है; इसके अर्थ को भलीभाँति समझना चाहिए। बद्धजीव की क्रियाएँ दो प्रकार की हैं—एक सांसारिक और दूसरी स्वरूपभूता। देह-धारण अथवा समाज और राष्ट्र के विधान के पालन में भिन्न-भिन्न सांसारिक क्रियाएँ होती हैं। बद्धजीवन में भक्तों के लिये भी ये कर्तव्य हैं। इन बद्ध क्रियाओं के अतिरिक्त, जो जीव अपने दिव्य स्वरूप को पूर्ण रूप से जानकर भक्तियोग अथवा कृष्णभावना के परायण हो गया है, वह दिव्य क्रियाओं का सम्पादन भी करता है। इन स्वरूपभूता क्रियाओं को ही भक्तियोग कहते हैं। बद्धावस्था में सामान्यतः भक्तियोगमयी सेवा और देहसम्बन्धी सेवा समानान्तर रूप में एक साथ सम्पादित होती रहती हैं। परन्तु कभी-कभी इन दोनों कार्यों में परस्पर विरोध भी उत्पन्न हो सकता है। भक्त यथासम्भव पूरा ध्यान रखता है कि वह कोई ऐसा कार्य न कर बैठे जिससे उसकी हितावह अवस्था में बाधा आए। वह जानता है कि कृष्णभावना की शनैः-शनैः उत्तरोत्तर अनुभूति पर ही उसकी सम्पूर्ण क्रियाओं की सफलता निर्भर करती है। ऐसा होने पर भी, कदाचित् देखा जाता है कि कृष्णभावनाभावित मनुष्य कोई ऐसा कर्म कर बैठता है, जो समाज अथवा राज की दृष्टि से अति विगर्हित है। परन्तु इस प्रकार के क्षणिक पतन से वह भक्ति के अयोग्य नहीं हो जाता है। 'श्रीमद्भागवत' में कहा है कि जो अनन्यभाव से भगवद्भक्ति के परायण है, वह यदि गिर भी जाय, तो अन्तर्यामी भगवान् श्रीहरि उसका परिष्कार करके पाप से मुक्त कर देते हैं। माया इतनी प्रबल है कि पूर्ण भगवद्भक्तिनिष्ठ योगी भी कदाचित् उससे ग्रस्त हो जाता है। परन्तु कृष्णभावना अधिक शक्तिसम्पन्न है, जिससे इस प्रकार के प्रासंगिक स्खलन-पतन का तत्काल शोधन हो जाता है। इस प्रकार, भक्तिमार्ग की सफलता नित्यसिद्ध है। यदि